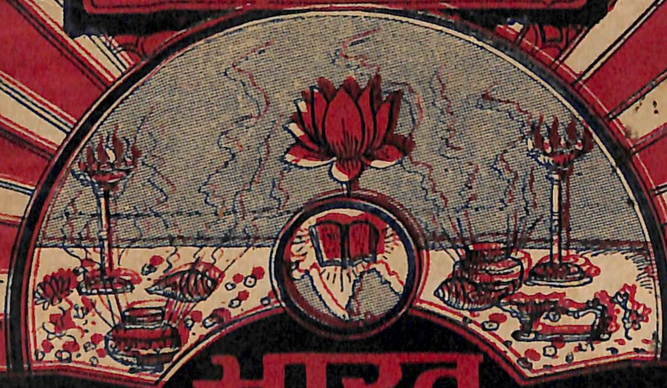


गंगालहरी भाषा टीका सहित।







भारत प्रकाशन मन्दिर, मथुरा

❀ ओ३म् जै शिव ❀

गंगालहरी

भाषानुवादसहित।



समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि त-
न्महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः।
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु ॥१॥

हे गङ्गे! आपका अपूर्व अमृततुल्य जल हमारे पापों का नाश करे! जो सारी पृथ्वी का सम्पूर्ण सौभाग्य (शोभारूप) है ... शिवजी की लीला से संसार में उत्पन्न हुआ है जिनकी ...न् शोभा है। जो श्रुतियों (वेदों) का तत्व और देवताओं ... छिपा हुआ पुण्य है॥ १॥

दरिद्राणां दैन्यं दुरितमथ दुर्वासनहृदा
द्रुतं दूरीकुर्वन् सकृदुपगतो दृष्टिसरणिम्।
अपि द्रागाविद्याद्रु मदलनदीक्षागुरुरिह
प्रवाहस्ते वारां श्रियमयमपारां दिशतु नः ॥२॥

हे माता! तेरे जल का यह प्रवाह हम को अपार लक्ष्मी ... जो एक बार दृष्टिगोचर होने से दरिद्रों की दीनता को तत्काल ...र करता है और दुष्टों के पापों को नाश करते हुए इस संसार ... शीघ्र ही अविद्यारूपी वृक्ष को नाश करने के लिये यह दीक्षा (गुप्त मन्त्र के उपदेश) देने वाले गुरु के समान है॥ २॥

स्मृतिं याता पुंसामकृतसुकृतानामपि च या
सरत्यन्तस्तन्द्रां तिमिरमिव चण्डांशुसरणिः ।
इयं सा ते मूर्तिः सकलसुरसंसेव्यसलिला
ममान्तःसन्तापं त्रिविधमथ तापश्चहरताम् ॥३

हे माता ! तेरी जलमयी मूर्ति हमारे हार्दिक सन्ताप और तीनों (आधिदैविक, आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक) तापों को हर ले जिसकी सब देवता सेवा करते हैं और जिसक स्मरण मात्र करने से ही पुण्यहीन मनुष्यों का अज्ञान इस प्रकार नष्ट होता हैं जैसे सूर्य किरणों से अन्धकार का नाश हो जाता है ॥३॥

तवालम्बादम्ब स्फुरदलघुगर्वेण सहसा
मया सर्वेऽवज्ञासरणिमथ नीताः सुरगणाः ।
इदानींमुदास्यं यदि भजसि भागीरथि तदा
निराधारो हारोदिमि कथय केषामिह पुरः ॥४

हे माता ! तेरे शरण में आने ही से मुझे अत्यन्त अभिमान हुआ, उससे मैंने सहसा सब देवताओं का अपमान किया तो हे भागीरथी ! यदि तू इस समय मेरे प्रति उदासीनता धारण करती हो अर्थात् मेरे उद्धार के लिये कुछ प्रयत्न नहीं करती तो हाय ! कहो ? अब निराधार मैं किसके सामने रोऊँ ॥ ४ ॥

अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा
विलोलद्वानीरं तव जननि तीरं श्रितवताम् ।
सुधातः स्वादीयं सलिलमिदमातृप्ति पिबतां
जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम् ॥५

हे माता ! जो लोग बहुत बड़े राज्य को भी तृण के समान जान कर एकाएक छोड़ कर तुम्हारे तीर का आश्रय किये हैं,

जहां फल फूल हीन वेल के वृक्ष झूमते हैं और अमृत से बढ़ कर स्वादिष्ठ जल को पीकर तृप्त होते हैं, उन मनुष्यों का आनन्द निर्वाणपदवी (मोक्ष मार्ग) का भी परिहास करता है अर्थात् मोक्ष को भी तुच्छ समझता है ॥ ५ ॥

उदञ्चन्मातण्डस्फुटकपटहेरम्बजननी—
कटाक्षव्याक्षेपक्षणजनितसंक्षोभनिवहाः ।
भवन्तुत्वङ्गन्तोहरशिरसिगङ्गातनुभुव-
स्तरङ्गाः प्रोत्तुगां दुरितभवभगांय भवताम् ॥६

श्री महादेव के शिर पर अत्यन्त ऊँची और चंचल गङ्गा जी की ये लहरें, जिनमें द्वेष प्रकट कर उदय होने वाले सूर्य के छल से माता पार्वती जी के कटाक्ष फेंकने से क्षणभर के लिये हलचल मच गयी है, वे आप लोगों के पापरूपी भय को नाश करें ॥६॥

प्रभाते स्नान्तीनां नृपतिरमणीनां कुचतटी
गतो यावन्मातामिलति तव तोयैर्मृगमदः ।
मृगास्तावद्वैमानिकशतसहस्रैः परिवृताः
विशन्ति स्वच्छन्दं विमलवपुषो नन्दनवनेम् ॥७

हे माता ! प्रातःकाल के समय जब तुम्हारे जल में स्नान करती हुई रानियों के स्तनों में लगा हुआ मृगमद (कस्तूरी) जब तक तुम्हारे जल में मिलती है, उतने ही में वे मृग जिनकी नाभि से यह कस्तूरी निकलती है दिव्य देह धारण कर लाखों देवताओं के बीच विमान में बैठ कर अपनी इच्छानुसार नंदनवन (इन्द्र के बगीचे) में पहुँचते हैं ॥ ७ ॥

स्मृतं सद्यः स्वान्तं सुरचयतिशान्तं सकृदपि
प्रगीतं यत्पापं झटिति भवतापं च हरति ।

इद्रं तद्‌गङ्गेति श्रवणरमणीयं खलु पदं
ममप्राणप्रान्ते वदनकमलान्तर्विलसतु ॥८॥

हे माता ! मेरे प्राणान्त के समय 'गङ्गा' शब्द मेरे मुख से निकले, जिसके स्मरण मात्र से तुरन्त ही अन्तः करण को शांति प्राप्त होती है, जिसके एक बार भी गाने से ही त्रिविध कायिक, वाचिक और मानसिक पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं और जो कानों को सुख देने वाला है ॥ ८ ॥

यदन्तः खेलन्तो बहुलतरसन्तोषभरिता
न काकानाकाधीश्वरनगरसाकाङ्क्षमनसः ।
निवासाल्लोकानां जनिमरणशोकापहरणं
तदेतत्ते तीरं श्रमशमनधीरं भवतु नः ॥९॥

हे गंगाजी ! तुम्हारे किनारे पर अत्यन्त संतोष से पूर्ण जो कौवें क्रीड़ा करते हैं वे तो इन्द्रपुरी नहीं चाहते हैं तेरा तट निवास लोगों के जन्म और मरणरूपी शोक को हरने वाला मेरे संसार रूपी शोक को नाश करने में समर्थ होवे।

न यत् साक्षाद्वेदैरपि गलितभेदैरवसितं
न यस्मिन् जीवानां प्रसरति मनोवागवसरः ।
निराकारं नित्यं निजमहिमनिर्वासिततमो
विशुद्धं यत्तत्त्वं सुरतटिनि तत्वं न विषयः॥१०॥

हे गंगे ! जिसके भेद को वेदों ने भी नहीं पाया और निश्चय नहीं किया, जिसमें प्राणियों के मन तथा वचन का प्रवेश नहीं जो निराकार और नित्य है तथा जिससे अविद्यारूपी अन्धकार

नष्ट होता है, तुम वही अतिशुद्ध तत्व हो, परन्तु भागीरथ के कुछ प्रयोजन सगर के पुत्रों के उद्धार के लिये तुम जलरूप में ही विद्यमान हो ॥ १० ॥

महादानैर्ध्यानैर्बहुविधानैरपि च यत्
न लभ्य घोराभिः सुविमलतपोराजिभिरपि।
अचिन्त्यं तद्विष्णोः पदमखिलसाधारणतया
ददाना केनासि त्वमिह तुलनीया कथय नः॥११॥

हे माता! बड़े दान ध्यान अनेक प्रकार के विधान तथा बड़ी घोर विमल तपस्या से भी जो प्राप्त नहीं हो सकता, वह विष्णु का अचिन्त्य पद तुम सर्वथा साधारण रीति से हम लोगों को देती हो तो तुम्हारी समता किससे की जा सकती है, वह बताओ अर्थात् संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं जिससे तुम्हारी तुलना की जाय॥ ११ ॥

नृणामीक्षामात्रादपि परिहरन्त्या भवभयं
शिवायास्ते मूर्तेः कइह बहुमानं कथयतु ।
अमर्षम्लानायाः परममनुरोधं गिरिभुवो
विहाय श्रीकण्ठः शिरसिनियतं धारयति याम् ॥१२॥

हे माता! केवल कृपादृष्टि से भवसागर के भय का दूर करने वाली तेरी कल्याण मूर्ति की महिमा को इस संसार में कौन वर्णन कर सकता है, जिस (मंगलमूर्ति) को पार्वती जी के मन में अत्यन्त मलिनता होने पर भी महादेवजी (उनके आग्रह को मान कर) सर्वदा अपने मस्तक पर धारण करते हैं॥ १२ ॥

विनिन्द्यान्युन्मत्तैरपि च परिहार्याणि पतितै-
रवाच्यानि व्रात्यैः सपुलकमपास्यानि पिशुनैः।

हरन्ती लोकानामनवरतमेनांसि कियतां
कदाऽप्यश्रान्तत्व जगति पुनरेका विजयसे ॥१३

हे माता! जिन पापों को अज्ञानी लोग भी अति निन्दित समझते हैं और जिनको पतित लोग भी दूर से ही त्याग देते हैं, तथा संस्कार हीन मनुष्य भी जिसे अवाच्य कहते हैं और जिनसे क्रूर हृदय वालों को भी रोमाञ्च हो जाते हैं अर्थात् पापी भी जिनको नहीं कर सकते, ऐसे ऐसे पाप करने वाले मनुष्यों का बारम्बार उद्धार करते हुए तुमको थकावट भी नहीं आती तुम अकेली ही संसार में विजय प्राप्त करती हो ॥ १३ ॥

स्खलन्ती स्वर्लोकादवनितलशोकापहृतये
जटाजूटग्रन्थौ यदसि विनिबद्धा पुरभिदा।
अये! निर्लोभानामपि मनसि लोभं जनयतां
गुणानामेवायं तव जननि दोषःपरिणतः ॥१४॥

हे माता! पृथ्वीतलनिवासियों के शोक हरने के लिये स्वर्ग लोक से आई हुई तुम शिवजी के जटाजूट की गाँठ में बँध गई हो इस लिये निर्लोभियों के मनमें भी लोभ उत्पन्न करने वाले तुम्हारे गुणों से बन्धनरूपी दोष उत्पन्न होगया है ॥ १४ ।

जडानन्धान्पङ्गून्प्रकृतिबधिरानुक्ति विकलान्
ग्रहग्रस्तानस्ताखिलदुरितनिस्तारसरणीन्
निलिम्पैर्निर्मुक्तनपि च निरयान्तर्निपतितान
नरानम्ब त्रातुं त्वमिह परमं भेषजमसि ॥ १५

हे माता! इस संसार में जड़ (ज्ञानरहित), अंधे पंगु, जन्म के बहिरे, गूंगे, ग्रहों से पीड़ित अर्थात् अतिक्लेश में फँसे हुये मनुष्य जिनके पापों को दूर करने का कोई उपाय नहीं है,

जिसकी रक्षा देवता भी नहीं कर सकते, जो काम क्रोध रूपी नरक में पड़े हैं, ऐसे पातकी मनुष्यों के पाप रूपी रोग दूर करने की तुम ही अत्युत्तम औषधि हो ॥ १५ ॥

स्वभावस्वच्छानां सहजशिशिराणामयमपा-
रस्ते मातर्जगति महिमा कोऽपि जयति ।
मुदायं गायन्ति द्युतलमनवद्यद्युतिभृतः
समासाद्याद्यापि स्फुटपुलकसान्द्राः सगरजाः॥१६॥

हे माता! आपके स्वभाव से ही स्वच्छ और प्रकृति से ही ठण्डे जल की अद्भुत और असीम महिमा सारे संसार में विख्यात है, जिसको अब भी स्वर्ग में बैठे हुए सगर के साठ हजार पुत्र सद्गद वाणी से आनंद पूर्वक गा रहे हैं ॥१६॥

कृतक्षुद्रैनस्कानथ झटिति सन्तप्तमनसः
समुद्धर्तुं सन्ति त्रिभुवनतले तीर्थनिवहाः ।
अपि प्रायश्चित्तप्रसरणपथातीतचरितान्
नरानूरीकर्तुं जगति खलु जागर्ति भवती ॥१७॥

हे माता! इस संसार में साधारण पाप करने वाले और झट पट मनमें पश्चात्ताप करने वालों के उद्धार के लिये तो अनेक तीर्थ हैं परन्तु उन मनुष्यों को जिनके पाप प्रायश्चित्त की सीमा से बाहर हो गए हैं अर्थात् ऐसे पाप हैं, जिनका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता उन्हें स्वीकार करने के लिये संसार में केवल तुम ही हो ॥१७॥

निधानं धर्माणां किमपि च विधानं नवमुदां
प्रधानं तीर्थानाममलपरिधानं त्रिजगतः ।

समाधानं बुद्धेरथ खलु तिरोधानमधियां
श्रियामाधानं नः परिहरतु तापं तव वपुः॥१८॥

हे गङ्गे! तुम्हारा शरीर, (जल) हम लोगों के ताप का नाश करे, जो धर्म का स्थान है, नये संतोषों का विधान है, सब तीर्थों में मुख्य है, तीन लोक का निर्मल आवरण है बुद्धि का समाधान करने वाला है. निर्बुद्धि का आच्छादक है और लक्ष्मी का घर है अर्थात् सम्पत्ति देने वाला है॥ १८॥

पुरो धावं धावं द्रविणमदिराघूर्णितदृशां
महीपानां नानातरुणतरखेदस्य नियतम्।
समैवायं मन्तुः स्वहितशतहन्तुर्जडधियो
वियोगस्ते मातर्यदिह करुणातः क्षणमपि॥१९॥

ा! मैंने धनरूपी मदिरा से भ्रमित दृष्टि वाले अनेक राजाओं के सन्मुख दौड़ दौड़ कर अनेक प्रकार के नये नये कष्ट उठाये और मैं अपने सैकड़ों हितकारी कार्यों का नाशक अज्ञानी हूँ, इसी कारण आप मुझ पर दया कीजिये॥ १९॥

मरुल्लीलालोलल्लहरिलुलिताम्भोजपटल-
स्खलत्पाँसुव्रातच्छुरणविलसत्कौङ्कुमरुचि।
सुरस्त्रीवक्षोजक्षरदगरुजम्बालजटिलं
जलं ते जम्बालं मम जननि जालं जरयतु॥२०॥

हे माता! वायु के स्पर्श से चलायमान तेरी लहरों के साथ हिलते हुए कमल समूह से गिरी केसर की रज के मिल जाने से तेरा निर्मल केसरिया जल जिसमें देव-स्त्रियों के स्तन से निकले हुए अगरु वर्तमान हैं, मेरे जाल को नाश करें॥ २०॥

समुत्पत्तिः पद्मारमणपदपद्मामलनखा-
न्निवासः कन्दर्पप्रतिभटजटाजूटभवने ।
अथायं व्यासङ्गो हतपतितनिस्तारणविधौ
न कस्मादुत्कर्षस्तव जननि जागर्ति जगति ॥२१॥

हे माता ! संसार में तुम्हारी महिमा क्यों न जगमगाती रहे, तुम्हारी उत्पत्ति पद्मारमण श्रीविष्णु के चरणारविन्द के स्वच्छ नख से हुई है, काम को मारने वाले शिवजी का जटाजूट रूपी भवन तुम्हारा निवासस्थान है और सम्पूर्ण पापियों का उद्धार करने में तुम सदा लगी रहती हो (तात्पर्य यह है कि तुम उत्तम स्थान से उत्पन्न हुई हो और ऐसे उच्च स्थान में निवास करती हो। फिर यदि पतितों को उद्धार करो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है) ॥२१॥

नगेभ्यो यान्तीनां कथय तटिनीनां कतमया
पुराणांसंहर्तुः सुरधुनि कपर्दोऽधिरुरुहे ।
कया वा श्रीभर्तुः पदकमलमक्षालि सलिलै-
स्तुलालेशो यस्यां तव जननि दीयेत कविभिः ॥२२

हे माता ! पर्वतों से आने वाली वे कौन सी नदियां हैं जो महादेवजी की जटा में चढ़कर बैठी हैं तथा किसने लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् के चरण कमलों को अपने जल से धोया है कि जिसको थोड़ी सी उपमा कविवरों से दी जा सके, सो कहो [अर्थात् कोई भी ऐसी नदियां नहीं हैं जिनकी थोड़ी उपमा भी तुम से दी जा सकती है)।

विधत्तां निःशङ्कं निरवधिसमाधिं विधिरहो
सुखं शेषे शेतां हरिरविरतं नृत्यतु हरः ।

कृतं प्रायश्चित्तैरलमथ तपोदानैयजनैः
　　सवित्री कामानां यदि जगति जागर्ति भवती ॥२३॥

हे माता ! यदि संसार में सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली आप उपस्थित हो तो ब्रह्मा यदि निर्मम हो चिरकाल तक समाधि लगावें, तो कुछ चिन्ता नहीं । विष्णु शेषनाग पर सुख से सोवें, तो क्या ? शिवजी चाहे जब तक नृत्य किया करें, प्रायश्चित्तों की कुछ भी आवश्यकता नहीं और तप, दान और यज्ञों से भी क्या, अर्थात् यदि तुम हो, तो इनके बिना भी सब काम सहज ही चल सकता है ॥ २३ ॥

अनाथः स्नेहार्द्रां विगलितगतिः पुण्यगतिदां
　　पतन्विश्वोद्धर्त्रीं गदविदलितः सिद्धभिषजम् ।
सुधासिन्धुं तृष्णाकुलितहृदयो मातरमयं
　　शिशुः संप्राप्तस्त्वामहमिह विदध्याःसमुचितम् ॥२४

हे माता ! मैं अनाथ बालक हूँ तुम स्नेह मयी माता हो मैं गतिहीन हूँ, तुम सद्गति देने वाली हो । मैं पतित हूँ और तुम विश्व का उद्धार करने वाली हो । मैं रोग-ग्रस्त हूं और तुम उसकी सिद्ध औषधि हो । मेरा हृदय प्यास से व्याकुल है और तुम अमृत सिन्धु हो । मैं इसी कारण ऐसी अवस्था में पड़ा हुआ तुम्हारी शरण में आया हूँ । अब जो उचित हो सो करो ॥ २४ ॥

विलीनो वै वैवस्वतनगरकोलाहलभरो
　　गता दूता दूरं क्वचिदपि परेतान्मृगयितुम् ।
विमानानां व्रातो विदलयति वीथीर्दिविषदां
　　कथा ते कल्याणी यदवधि महीमण्डलमगात् ॥२५

हे माता ! इस पृथ्वीमण्डल में जब से तेरी कल्याणकारी कथा आई है तभी से यमपुर का कोलाहल निश्चय ही मिट

गया (यमयातना मिट गई) और यमके दूत पापियों को दूर २ देशों में खोजने के लिये चले जहाँ तुम्हारी कथा लोगों को विदित नहीं है और इस कारण तुम्हारी कथा के प्रताप से विमानों के समूह से देव मार्ग में बड़ी भीड़ भाड़ होने लगी है ॥ २५ ॥

स्फुरत्कामक्रोध-प्रबल-रससञ्जात-जटिल-
ज्वरज्वालाजालज्वलितवपुषां नः प्रतिदिनम् ।
हरन्तां सन्तापं कमपि मरुदुल्लासिलहरी-
च्छटाचञ्चत्पाथःकणसरणयो दिव्यसरितः ॥२६॥

दिव्य नदी श्रीगङ्गाजी में वायु से उठी हुई चञ्चल लहरियों से उड़ते हुए जल कणों का समूह प्रतिदिन हम लोगों के प्रबल काम और क्रोध से उत्पन्न विकराल ज्वर की ज्वाला से दग्ध अङ्गों के सन्ताप (क्लेश) को नाश करे ॥ २६ ॥

इदं हि ब्रह्माण्डं सकलभुवनाभोगभवनं
तरङ्गैर्यस्यान्तर्लुठति परितास्तिन्दुकमिव ।
स एष श्रीकंठप्रविततजटाजूटजटिलो
जलानां संघातस्तव जननि पापं हरतु नः ॥२७॥

हे माता ! शिवजी का विस्तीर्ण जटाजूट जो मानों चौदह लोकों का दूसरा ब्रह्माण्ड है, उस आनन्द भवन में लहरों के वेग से चारों ओर गेंद की भांति लुढकता हुआ तेरे जल का समूह हमारे पापों को नाश करे ॥ २७ ॥

त्रपन्ते तीर्थानि त्वरितमिह यस्योद्धृतिविधौ
करं कर्णे कुर्वन्त्यति किल कपालिप्रभृतयः ।
इमं तं मामम्ब त्वमियमनुकम्पार्द्रहृदया
पुनाना सर्वेषामघमथनदर्पं दलयसि ॥ २८ ॥

हे माता ! इस संसार के सभी तीर्थ, मेरे उद्धार करने में अति लज्जित होते हैं कोई तीर्थ मेरा उद्धार नहीं करता शिव इत्यादि भी मेरे नाम से कान पर हाथ रखते हैं, हे अम्बे ! ऐसे मुझ पापी का करुणा पूर्ण हृदय से तुम उद्धार करती हुई सब तीर्थ तथा देवता इत्यादि पतित पावनों के अभिमान को तोड़ देती हो ।

श्वपाकानां व्रातैरमितविचिकित्साविचलितैः
विमुक्तानामेकं किल सदनमेनःपरिषदाम् ।
अहो मामुद्धर्तुं जननि दृढयन्त्याः परिकरं
तव श्लाघां कर्तुं कथमिह समर्थो नरपशुः ॥२९

हे माता ! मैं अवश्य उन पापियों में से एक हूँ, जिनके उद्धार का कोई उपाय न रहने के कारण चाण्डालों ने भी जिन्हें त्याग दिया है, ऐसे महापातकी के उद्धार के लिये आपने कमर बांधी है, तो भला पशु के समान मूर्ख मैं कैसे तुम्हारी स्तुति करने योग्य हो सकता हूँ ॥ २९ ॥

न कोऽप्येतावन्तं खलु समयमारभ्य मिलितो
यदुद्धाराहाराद्भवति जगतो विस्मयभरः ।
इतीमामीहां ते मनसि चिरकालं स्थितवती–
मयं सम्प्राप्तोऽहं सफलयितुमम्ब प्रणयतः ॥ ३०

हे माता ! अब तक जो चिर-काल से आपके मन में था कि कोई ऐसा पातकी मनुष्य मिले जिसके उद्धार करने से सारे संसार को आश्चर्य हो, किन्तु कोई ऐसा मनुष्य आज तक न मिला तो इस आपकी इच्छा को पूर्ण करने के लिये आपके सन्मुख नम्रता पूर्वक स्नेह से आया हूं आप मुझ पर कृपा कीजिए ॥३०॥

श्ववृत्तिव्यासङ्गो नियतमथ मिथ्याप्रलपनं
कुतर्केष्वभ्यासः सततपरपैशुन्यमननम् ।
अपि श्रावं श्रावं मम तु पुनरेवंविधगुणा-
नृते त्वत्को नाम क्षणमपि निरीक्षेत वदनम्॥३१

हे माता ! निरन्तर श्वान वृत्ति (पेट भरने के लिये घूमना) धारण किये हुये झूठ बोलने तथा बुरी २ कल्पनाओं का अभ्यास और सदा दूसरों की बुराई सोचना मेरे ऐसे अवगुणों को सुन२ कर तुम्हारे अतिरिक्त कौन ऐसा है जो मेरा मुख देखेगा । भला माता के अतिरिक्त कुपुत्र का मुख कौन देखना चाहेगा ! ॥३१॥

विशालाभ्यामाभ्यां किमिह नयनाभ्यां खलु फलं
न याभ्यामालीढा परमरमणीया तव तनुः ।
अयं हि न्यक्कारो जननि मनुजस्य श्रवणयो-
र्ययोर्नान्तर्यातस्तव लहरिलीलाकलकलः ॥३२

हे माता ! इस संसार में इन बड़ी आंखों का क्या फल है। जिनसे तुम्हारे परम रमणीय दर्शन का आनंद न लिया गया अर्थात् जिन आंखों ने तुम्हारा दर्शन न किया वे व्यर्थ हैं और मनुष्य के कानों को धिक्कार है, जिन्होंने तुम्हारे जल का कल कल शब्द नहीं सुना हो, उनका कान व्यर्थ है ॥ ३२ ॥

विमानैः स्वच्छन्दं सुरपुरमयन्ते सुकृतिनः
पतन्ति द्राक् पापा जननि नरकान्तःपरवशाः ।
विभागोऽयं तस्मिन्नशुभचयमूर्त्तौ जनपदे
न यत्र त्वं लीलादलितमनुजाशेषकलुषा ॥ ३३ ॥

हे माता ! जिस जगह अपनी लीला से मनुष्य के सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाली तुम विद्यमान नहीं हो, वह स्थान पाप की साक्षात् मूर्ति स्वरूप है। वहां पुण्यवान लोग इच्छानुसार विमानों पर चढ़ स्वर्ग को जाते है, और पापी लोग परवश (लाचार) होकर शीघ्र नरक में गिरते हैं ऐसा उन स्थानों में होता है, जहाँ सब पापों के नाश करने वाली तुम (गंगे) नहीं हो ॥ ३३ ॥

अपि घ्नन्तो विप्रानविरतमुपन्तो गुरुसतीः
पिबन्तो मैरेयं पुनरपि हरन्तश्च कनकम् ।
विहाय त्वय्यन्ते तनुमतनुदानाध्वरजुषा-
मुपर्यम्ब क्रीडन्त्यखिलसुरसम्भावितपदाः ॥३४

हे माता ! ब्राह्मणों को मारने वाले गुरुजनों की पतिव्रता स्त्रियों के साथ व्यभिचार की कुचेष्टा करने वाले, मदिरा पीने वाले तथा स्वर्ण की चोरी करने वाले मनुष्य अन्त में मरने के समय आपके जल में शरीर छोड़ कर बड़े २ दानी और यज्ञ करने वालों के लोक से ऊपर देवताओं के योग्य स्थानों में सुख भोग करते है ॥ ३४ ॥

अलभ्यं सौरभ्यं हरति सततं यः सुमनसां
क्षणादेव प्राणानपि विरहशस्त्रक्षतहृदाम् ।
त्वदीयानां लीलाचरितलहरीणां व्यतिकरा-
त्पुनीते सोऽपि द्रागहह पवमानस्त्रिभुवनम् ॥३५॥

हे माता ! जो वायु पुष्पों की दुर्लभ सुगन्ध को निरन्तर हरती है और विरहरूपी शास्त्र से विदीर्ण हृदय वालों के प्राणभी हर लेती है, लीला से चञ्चल, तुम्हारी लहरों को प्राप्त करके वही आश्चर्य जनक वायु तीन लोकको पवित्र कर देती है ॥३५॥

कियन्तः सन्त्येके नियतमिह लोकार्थघटकाः
परे पूतात्मानः कति च परलोकप्रणयिनः ।
सुखं शेते मातस्तव खलु कृपातः पुनरयं
जगन्नाथः शश्वत्त्वयि निहितलोकद्वयभरः ॥३६॥

हे माता ! इस संसार में कुछ लोग तो ऐसे हैं जो सदा परोपकार में ही लगे रहते हैं और कितने ही ऐसे हैं जो पर लोक प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं । परन्तु हे मात । यह जगन्नाथ (मैं) सदा के लिये लोक परलोक दोनों भार तुम्हारे ऊपर छोड़ कर आपकी कृपा से सुख पूर्वक सोता है ॥ ३६ ॥

भवत्या ही व्रात्याधमपतितपाखण्डपरिष-
त्परित्राणस्नेहः श्लथयितुमशक्यः खलुयथा ।
ममाप्येवं प्रेमा दुरितनिवहेष्वम्ब जगति
स्वभावोऽयं सर्वैरपि खलु यतो दुष्परिहरः ॥३७॥

हे माता ! जिस प्रकार संसकारहीन अधम पतित और पाखण्डी लोगों का उद्धार करने से तुम्हें प्रेम है और इस (अनुराग) को शिथिल करना अशक्य है इसी प्रकार मेरी प्रीति भी पापों के समुदाय में है और मैं इससे हट नहीं सकता क्योंकि ससार में किसी का स्वभाव बदलता नहीं ॥ ३७ ॥

प्रदोषान्तर्नृत्यत्पुरमथनलीलोद्धतजटा-
न्ताराभोगप्रेङ्खल्लहरिभुजसन्तानविधुतिः ।
बिलक्रोडक्रीड़ज्झलडमरुडङ्कारसुभग-
स्तिरोधत्ता तापं त्रिदशतटिनीताण्डवविधिः ॥३८॥

हे माता ! प्रदोषकाल में नाचते हुए महादेवजी क्रीड़ा से उठती हुई गङ्गाजी के लहरें भुजाओं के समान है

और उनका गिरने का शब्द मानों ताल देना है और पर्वत आदि की कन्दराओं में प्रवेश करते हुये जल का शब्द मानों डमरू का सुन्दर डङ्कार है. गङ्गा जी का नृत्य मेरे पापों को दूर करे ॥३८

सदैव त्वय्येवार्पितकुशलचिन्ताभरमिमं
यदि त्वं मामन्व त्यजसि समयेऽस्मिन्सुविषमे ।
तदा विश्वासोऽयं त्रिभुवनतलादस्तमयते
निराधारा चेयं भवति खलु निर्व्याजकरुणा ॥३६

हे माता ! मोक्ष प्राप्त करने की चिन्ता का भार तुम्हारे ऊपर रखने वाले मुझको यदि इस महान विपत्ति के समय तुम त्याग दोगी तो तीन लोक से यह विश्वास कि तुम सदैव पापियों का उद्धार करती हो, उठ जायगा और निश्चयही आपकी निष्कपट करुणा निराधार हो जायगी आपकी करुणा पर लोग विश्वास नहीं करेंगे ॥ ३६ ।

कपर्दादुल्लस्य प्रणयमिलदर्द्धाङ्गयुवतेः
पुरारेः प्रेङ्खन्त्यो मृदुलतरसीमन्तसरणौ ।
भवान्या सापत्न्यस्फुरितनयनं कोमलरुचा
करेणाक्षिप्तास्ते जननि विजयन्तां लहरयः ॥४०

हे माता ! प्रेम पूर्वक शिवजी के आधे अंग में सम्मिलित श्री भवानी जी की अतिकोमल मांग में जब महादेवजी के जटा से कूद कर आपकी लहरें पड़ती हैं तब पार्वती जी इनको अपना कर कमल द्वारा हटा देती हैं और सौतियाडाह से वे आंख फाड़ने लगती हैं मुख कांति लाल हो जाती है, ऐसी आपकी लहरें सदा जय प्राप्त करें ॥ ४० ॥

प्रपद्यन्ते लोकाः कति न भवतीमत्र भवती-
मुपाधिस्तत्रायं स्फुरति यदभीष्टं वितरसि ।

अये तुभ्यं मातर्मम तु पुनरात्मा सुरधुनि
स्वभावादेव त्वय्यमितमनुरागं विधृतवान् ॥४१॥

हे परमपूज्य माताः ! आपके निकट नित्य कितने पुरुष नहीं आते (अर्थात् सभी आते हैं) परन्तु उनके आने का कारण यही है कि तुम उनको अभिष्ट फल देती हो, परन्तु हे सुरधुनि ! मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि मेरा चित्त स्वभाव से ही आप में बहुत अनुरक्त है ॥ ४१ ॥

ललाटे या लोकैरिह खलु सलीलं तिलकिता
तमो हन्तुँ धत्ते तरुणतरमार्तण्डतुलनाम् ।
विलुम्पंती सद्यो विधि लिखितदुर्वर्णसरणिं
त्वदीया सा मृत्स्ना मम हरतु कृत्स्नामपि शुचम् ॥४२।

हे माता ! तेरी वह उत्तम मिट्टी मेरे सम्पूर्ण शोक को हरे, जो जगत में लोगों के मस्तक पर लीला सहित तिलक होकर अविद्या के अन्धकार को प्रचण्ड सूर्य के प्रकाश की भांति नाश करती है तथा विधाता के लिखे बुरे अक्षर अर्थात् दुर्भाग्य तत्काल मिटा देती है ॥ ४२ ॥

नरान्मूढांस्तत्तज्जनपदसमासक्तमनसो
हसन्त: सोल्लासं विकचकुसुमव्रातमिषत: ।
पुनाना: सौरभ्यै: सततमलिनो नित्यमलिनान्
सखायो न: सन्तु त्रिदशतटिनीतीरतरव: ॥४३॥

हे माता ! तेरे तट के वृक्ष मेरे लिये सुखकारी हों, जो बिकसित फूलों के बहाने उन मूर्ख मनुष्यों पर हँस रहे हैं जिनका मन अपने देशों में अच्छी तरह लगा है और जो मलिन भ्रमर को भी अपने पुष्पों के सुगन्ध से पवित्र करते हैं ॥ ४३ ॥

यजन्त्येके देवान् कठिनतरसेवांस्तदपरे

वितानव्यासक्ता यमनियमरक्तः कतिपये ।

अहं तु त्वन्नामस्मरण कृत कामस्त्रिपथगे

जगज्जालं जाने जननि तृणजालेन सदृशम् ॥४४॥

हे त्रिपथगामिनी ! (स्वर्ग, मृत्यु तथा पाताललोग जाने वाली कुछ लोग देवओं की अति कठिन सेवा करते हैं, कुछ अग्निहो यज्ञ इत्यादिकों में आसक्त रहते हैं और कुछ यम नियम (अष्टांगयोग) साधते हैं, परन्तु हे माता ! तुम्हारे नाम का स्मरण करके मैं संसार रूपी जाल को तिनके के जाल के समान समझता हूँ ॥ ४४ ॥

अविश्रान्तं जन्मावधि सुकृतिमर्ाकवतां

सतांश्रेयः कर्तुं कति न कृतिनः सन्ति विबुधाः ।

निरस्तालम्बानामकृतसुतानां तु भवतीं

विनाऽमुष्मिल्लोके न परमवलोके हितकरम् ॥४५॥

हे माता ! जिन लोगों ने जन्म से लेकर बराबर पुण्य ही पुण्य किये हैं उनके कल्याण करने के लिये कितने देवता नहीं अर्थात् उन निरावलम्बियों(बिना आश्रयवालों)का हित करनेवाला इस लोक में मैं तुम्हारे सिवाय किसी को नहि देखता हूँ ॥४५॥

पयः पीत्वा मातस्तव सपदि यातः सहचरै-

र्विमूढैः संहर्तुं क्वचिदपि न विश्रान्तिमगमम ।

इदानीमुत्संगे मृदुपवनसञ्चारशिशिरे

चिरादुन्निद्रं माँ सदयहृययेस्थापय चिरम् ॥४६॥

हे माता ! एक बार तेरा जल पीकर कोई मूर्ख अपने साथियों के साथ आनन्द लेने के लिये कहीं गया, परन्तु सुख कहीं नहीं मिला, अब हे दयालु हृदये ! बहुत दिनों से जगे हुए मुझ (अपने पुत्र) को मन्द वायु से अपनी गोद में निरन्तर सुलाये मुझे तेरे तट के अतिरिक्त कहीं संतोष न हुआ अब मैं तेरी शरण आया हूं मुझे अन्त में प्रसन्न कर दो ॥ ४६ ॥

बधान द्रागेव द्रढिमरमणीयं परिकरं
किरीटे बालेन्दुं नियमय पुनः पन्नगगणैः ।
न कुर्यास्त्वं हेलामितरजनसाधारणधिया
जगन्नाथस्यायं सुरधुनि समुध्दारसमयः ॥४७॥

हे सुरधुनि ! आप शीघ्र अपने सुन्दर कटिवस्त्र को कस कर बांधिये और मुकुट में बाल चन्द्रमा लगाकर सर्पों में सजिये मुझे साधारण बुद्धि से पराया समझ कर मेरा तिरस्कार मत कीजिये, क्योंकि इस (इस जगन्नाथ के मेरे उद्धार का यही समय है ॥ ४७ ॥

शरच्चन्द्रश्वेतां शशिशकलशोभालमुकुटां
करैः कुम्भाम्भोजे वरभय निरासौ च दधतीम् ।
सुधाधाराकाराभरणवसना शुभ्रमकर–
स्थितां येध्यायंति ह्युदयति न तेषां परिभवः ॥४८॥

शरत् चन्द्रमा के समान उज्ज्वल अर्ध चन्द्र से शोभित मुकुट धारण करने वाली, चारों हाथों में जलपूर्ण घट कमल, बरदान और अभयदान, चारों को धारण किये, अमृत धारा के समान सलङ्कार और वस्त्र धारण किये और उज्ज्वल मगर वाहिनी तुम्हारा ध्यान करते हैं उनके दुख का कभी उदय नहीं होता सदा सुखी रहते हैं ॥ ४८ ॥

दरस्मितसमुल्लसद्वदनकान्तिपूरामृतै-
र्भवज्वलभर्जितानिशमूर्जयन्ती नरान् ।
चिदेकमयचन्द्रिकाचयचमत्कृतिं तन्वती
तनोतु मम शन्तनोः सपदि शन्तनोरङ्गनाः ॥४६॥

मन्द मुसुकाने से सोभायुक्त मुखकान्ति समूह रूपी अमृत द्वारा भवरूपी अग्नि से भुने हुए मनुष्यों को निरन्तर ठण्डा करने वाली और ज्ञान चन्द्रिका के चमत्कारी राजा शान्तुन की स्त्री (गङ्गा जी) मेरे शरीर से आनन्द की वृद्धि करे ॥ ४६ ॥

मन्त्रैर्मीलितमौषधैर्मुकुलितं त्रस्तं सुराणां गणैः
स्रस्तं सान्द्रसुधारसैर्विंगलितं गारुत्मतैर्ग्रावभिः ।
वीचिक्षालितकालियाहितपदे स्वर्लोककल्लोलिनि
त्वं ताप शमयाधुना मम भवव्यालावलीढात्मनः ।५०।

कालीनाग के शत्रु (श्री कृष्ण) के चरणों को अपनी लहरों से धोने वाली, हे स्वर्लोककल्लोलिनी ! अब तुम संसार रूपी सर्प से डसी हुई मेरी आत्मा के ऐसे पापों को शांत करो, जिन मंत्रों से नष्ट नहीं होते जिनमें औषधियाँ असमर्थ हो चुकी है, देवता डरते हैं, सुधारस व्यर्थ होते हैं और गारुत्मत मणियों से भी नहीं जाते हैं ॥ ५० ॥

द्यूते नागेन्द्रकृत्तिं प्रमथगणगणश्रेणिनन्दीन्दुमुख्यं
सर्वस्वं हारयित्वा स्वमथ पुरभिदि द्राक्पणीकर्तुकामे ।
साकूतं हैमवत्या मृदुलहसितया वीक्षितायास्तवाम्ब
व्यालोलोल्लासिवल्गल्लहरिनवघटाताण्डवं नः पुनातु ।५१।

हे माता ! पार्वती माता से पहले गज चर्म, और सर्प गण, नन्दी तथा चन्द्रमा इत्यादि सब जुआ में हार कर जब महादेवजी अपने को दांव पर लगाने की इच्छा करने लगे तब जो मन्द मुसुकान से (यह जानकर कि उनकी सौत तुम अब उनके अधीन हो जाओगी) पार्वती जब तिरछी नजर से देखने लगीं तो कोप के कारण तुम्हारी लहरें (उत्ताल) चंचल होने लगीं। उन चंचल लहररूपी नवघटा का नृत्य मुझे पवित्र करे ॥ ५१ ॥

विभूषितानङ्गरिपूत्तमाङ्गा
सद्यः कृतानेकजनार्तिभङ्गा
मनोहरोत्तुङ्गचलत्तरङ्गा
गङ्गा ममाङ्गान्यमलीकरोतु ॥ ५२॥

अनङ्गरिपु (महादेव जी के मस्तक को शोभायमान करने वाली और अतिसुन्दर ऊँची चंचल लहर वाली गंगाजी महारानी हमारे सब अंगों को पवित्र करें ॥ ५२ ॥

इमां पीयूषलहरीं जगन्नाथेन निर्मिताम् ।
यः पठेत्तस्य सर्वत्र जायन्ते सर्वसम्पदः ॥५३॥

पण्डितराज जगन्नाथ की बनाई पीयूषलहरी को जो कोई पढ़ता है, वह सब सुख सम्पत्ति पाता है ॥ ५३ ॥

इति श्रीमत्पण्डितराज जगन्नाथ विरचित श्रीगंगालहरी सम्पूर्ण

❀ आरती तुलसीजी की ❀

जय जय तुलसी माता ।
सब जग की सुखदाता......वरदाता ॥ जय० ॥
सब योगों के ऊपर, सब रोगों के ऊपर ।
रुज से रक्षा करके भव त्राता ॥ जय० ॥
बहुपत्नी ! हे श्यामा ! सुरबल्ली ! हे ग्राम्या !
विष्णुप्रिये ! जो तुमको, सेवे सो तर जाता ॥ जय० ॥
हरि के शीश विराजित त्रिभुवन से हो वंदित,
पतित जनों की तारिणि, तुम हो विख्याता ॥ जय० ॥
लेकर जन्म विपिन में, आई दिव्य भवन में,
मानव लोक तुम्हीं से सुख सम्पति पाता ॥ जय० ॥
हरिको तुम अति प्यारी, श्यामवरण सुकुमारी,
प्रेम अजब है उनका, तुमसे कैसा नाता ॥ जय० ॥

॥ विष्णु आरती स्तोत्र ॥

ओ३म् जै जगदीश हरे स्वामी जै जगदीश हरे ।
भक्त जनों के संकट छिन में में दूर करे ॥ ओ० ॥ १ ॥
जो ध्यावे फल पावे दुःख विनसे मनका ।
सुख संपति घर आवे कष्ट मिटे तनका ॥ ओ० ॥ २ ॥
मात पिता तुम मेरे शरण गहूं किसकी ।
तुम बिन और न दूजा आस करूं जिसकी ॥ ओ० ॥ ३ ॥
तुम हो पूरण परमात्मा तुम अन्तरयामी ।
पारब्रह्म परमेश्वर तुम सबके स्वामी ॥ ओ० ॥ ४ ॥
तम करुणा के सागर तुम पालन करता ।
मैं मूरख खल कामी कृपा करो भरता ॥ ओ० ॥ ५ ॥
तुम हो एक अगोचर सब के प्राण पती ।
किस विधि मिलूं गोसाईं तुमको मैं कुमती ॥ ओ० ॥ ६ ॥

दीन बन्धु दुख हरता ठाकुर तुम मेरे ।
अपने हाथ उठाओ द्वार पड़ा तेरे ॥ ओं० ॥ ७ ॥
विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा ।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ सन्तन की सेवा ॥ ओं० ॥ ८ ॥

❀ श्री गंगाजी की आरती ❀

ओं जय गंगे माता श्री जय गंगे माता ।
जा नर तुमको ध्याता जो नर तुमकोध्याता॥
मन बांछित फल पाता । ओं जय गंगे माता ॥ १ ॥
चन्द्र सी ज्योति तुम्हारी जल निर्मल आता ।
शरण पड़े जो तेरी शरण पड़े जो तेरी ॥
सो नर तर जाता । ओं जय गंगे माता ॥ २ ॥
पुत्र सगर के तारे सब जग को ज्ञाता ।
कृपा दृष्टि तुम्हारी कृपा दृष्टि तुम्हारी ॥
त्रिभुवन सुखदाता । ओं जय गंगे माता ॥ ३ ॥
एक ही बार जो तेरी, शरणागति जाता ।
यम की त्रास मिटाकर, यम की त्रास मिटाकर ॥
परम गति पाता । ओं जय गंगे माता ॥ ४ ॥
आरती मात तुम्हारी जो जन नित गाता ।
दास वही सहज में, दास वही सहज में ॥
मुक्ति को पाता । ओं जय गंगे माता ॥ ५ ॥

❀ श्री गंगाजी की आरती ❀

जय भगवति गंगे । मा जय जय भगवति गंगे ।
तरल तरंगे दुर्मलि भगे सुरमति दे सगे ॥ज० ।टेक॥
विष्णु पदादनुसरणी खण्डनिब्रह्माण्डे ।
शङ्कर जटा के बिरहित अति रंगे ॥
जाह्नवि नाम तुम्हारी शोभित जय अनघे ।
भगीरथी मति लगने सगर जग उद्धरणे ॥ ज० ॥ १ ॥

अघनाशन भवशासन दासन शिवतनुजे ।
त्रासन मोह विकारन काशन ब्रह्मपद दे ॥
सुरसरि धारा सधारा कलिमलि टारन ।
जै शरणागत प्रतिपालक बालक शिव सुख दे ॥ ज० ॥ २ ॥
शिवशरणी जगतरणी हरणी भवसिंधो ।
हरिपद दाता धाता वन्दित जगमाता ॥
काम क्रोध विदारिणी दारुण दुर सुभगे ।
पाथोधि परतिय सुरधुनि गुण जंगे ॥ ज० ॥ ३ ॥
तव धारा जगपारा दर्शित भक्तजने ।
सेवत काशिनिवासी अखिल जन्मटरने ॥
शेश नरेश कवेशा गुण गावें तेरा ।
पूरी आस निराशी सुरसरि सुखदंगे ॥ ज० ॥ ४ ॥
सुरवधु सारी नृपति सुनारस्तिपा मृगमद दे ।
ते सुरलोक गच्छति सुरधर निर्मल दे ॥
तेरी महिमा का लगि वरनूं गंगे भवभंगे ।
त्रिपथगामिनी सुर नर पन्नगधे ॥ ज० ॥ ५ ॥
गंगा आरति सकल बधारति हरजनने ।
सुनत सुनावत फल पावत मनके ॥
गावत आरति रामकृष्ण जन के ।
सकल कामना पूरन करती श्री गंगे ॥ ज० ॥ ६ ॥



मु०-हीरालाल खुद्याना, जवाहर प्रिंटिंग प्रेस, गली गुसांइयान मथुरा

कवर प्रिंटर—पुष्पराज प्रेस, मथुरा।